शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 August 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भारतीय इतिहास की दृष्टि में हिंदी का उन्मेष

डॉ. सहदेवसिंह चौहान
सहायक शोध अधिकारी
मध्यकालीन भारतीय इतिहास,
श्री नटनागर शोध संस्थान
सीतामऊ, मध्यप्रदेश, भारत

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सन 1300 ई के पश्चात ही हिंदी साहित्य का उद्भव हुआ है। चौदहवीं शताब्दी में वह विकसित हुआ। सन 1400 ई. के पश्चात हिंदी साहित्य में अद्भुत नवोन्मेष एवं नवजागरण की वाणी मुखरित हुई। यह सुनिश्चितरूपेण दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि सन 1300 ई से 1527 ई. के बीच निर्मित हिंदी साहित्य निराशाजन्य भक्ति असहाय अवस्था हीनभावना से प्रेरित नहीं है न वह समाज का साहित्य है, जिसने अपना योगक्षेम राम भरोसे छोड़ दिया हो या जो उदासी में डूबा हुआ हो। यदि किसी साहित्य के इतिहास के युग विशेष को किसी नाम विशेष से संबोधित करना अनिवार्य ही हो तब सन 1300 ई. से हिंदी साहित्य का उन्मेष युग प्रारंभ हुआ था और सन 1400 ई. के पश्चात वह नवोन्मेष युग की तेजस्विता के साथ प्रवहमान हुआ था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बुद्ध चरित को शुद्ध यानि मथुरा की भाषा, ब्रजभाषा में लिखने के प्रयास के समर्थन में लिखा है, "ऐसी भाषा को देखते हुए ब्रजभाषा को जो 'ऐतिहासिक' या 'मरी हुई' कहे उसे अपना अनाड़ीपन दूर करने के लिए दिल्ली भाड़ झोंकने न जाना होगा, मथुरा की एक परिक्रमा से ही काम चल जाएगा।"**1** संवत 1979 वि. में जब शुक्लजी ने यह वाक्य लिखा था, तब ब्रजभाषा 'ऐतिहासिक' भले ही न हो, पर आज वह क्या है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसमें किसी को कोई अफसोस करने की बात भी नहीं। भाषा के रूप तो बदलते ही रहे हैं, बदलते ही रहेंगे। ब्रजभाषा नाम से निर्देशित साहित्य भारतीय वाड्.मय की अमर विभूति है, यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं। परन्तु साथ ही यह भी ऐतिहासिक सत्य है कि मथुरा की परिक्रमा से जो भाषा जानी जायेगी उसमें विशुद्ध रूप से काव्य रचना करने वाले बहुत बाद के और बहुत थोड़े पैदा हुए हैं। मध्यकालीन काव्यभाषा के वास्तविक रूप को समझने के लिए न दिल्ली भाड़ झोंकने के लिए जाने की आवश्यकता है और न चौरासी बैष्णवन की वार्ता में प्रस्थापित ब्रज मण्डल के चौरासी कोस की परिक्रमा करने की आवश्यकता है। इसके लिए तो विष्णुदास, मानक, मेघनाथ, चतुर्भुजदास निगम, केशवदास, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, बैजू, तानसेन, बिहारीलाल, महाकवि रायसुन्दरदास, यशवंतसिंह, भिखारीदास, भूषण जैसे कवियों की कृतियों के अवगाहन और ग्वालियर तथा ओरछा की रज लेकर बेतवा और चम्बल के जल से मनमुकुर निर्मल करने से काम चल जाएगा।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 August 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मध्यकाल के हिन्दी साहित्य को ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी अथवा अवधी कोई भी नाम देने में किसी को उतनी आपत्ति नहीं हो सकती, नाम में धरा ही क्या है, परन्तु जिस प्रवृत्ति के कारण हिन्दी भाषा और साहित्य के विवेचनों में अत्यन्त विद्रूप परिणाम निकले हैं, वह है मथुरा-गोकुल की बोली को टकसाली मानकर हिन्दी के संस्कृत रूप के विकास से लेकर 20वीं शताब्दी के प्रारंभ तक की काव्य भाषा के परीक्षण की भावना। इसी कारण ब्रजभाषा और ब्रजमण्डल के एक सम्प्रदाय विशेष में अस्तित्व प्राप्त करने से पहले की भाषा का नाम 'ब्रजभाषा' दिया जाता है।2 ब्रजभाषा नाम अपने साथ मथुरा की परिक्रमा की संकुचित भावना लेकर चलता है, वह उसका प्रतीक बन गया है। इसके कारण हमें इस मध्यकालीन काव्य भाषा में बुन्देलखण्डी, कन्नौजी, राजस्थानी, अवधी, मालवी विभेदों की दीवारें खड़ी दिखाई देती हैं। जो वास्त्व में उसमें कभी नहीं मानी गयीं। इस तथ्य का विस्मरण ही समस्त गड़बड़ी का मूल है। मध्यकालीन मध्यदेश की भाषा के विकास के इतिहास को हृदयंगम करने के पश्चात ही उस मध्यकालीन हिन्दी काव्यभाषा का सही रूप से विवेचन हो सकता है। जिसके विषय में पुनः शुक्लजी ने लिखा- "यद्यपि यह वाणी ब्रजभाषा के नाम से प्रसिद्ध है, पर वास्तव में अपने संस्कृत रूप में यह सारे उत्तरापथ की काव्यभाषा रही है।"**3** उसे नाम कोई भी दे दीजिए, प्रधान प्रश्न उसके रूप तथा उसकी ऐतिहासिक परम्परा का है।

ब्रज भाषा

नाम में कोई महत्व नहीं है। मध्ययुगीन काव्य भाषा का नाम 'ब्रजभाषा' अंगरेजी राज्य के समय में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गया है। परन्तु यह समझ लेना आवश्यक है कि मध्ययुगीन हिन्दी काव्य भाषा आगरा, धौलपुर, मथुरा, अलीगढ़ की बोली तक सीमित नहीं थी। न शौरसेनी अपभ्रंश काव्य भाषा सूरसेन क्षेत्र तक सीमित थी न उसकी बेटी हिन्दी काव्य भाषा किसी प्रदेश में सिकुड़ी सिमटी उत्पन्न हुई थी। वह न अकबर की दुहिता है, न गुसाइयों की बेटी, और न वह अंगरेजों की पोषिता है; उसका जनक है मुल्तान से बिहार तक तथा हिमालय से गोदावरी तट पर बसा हुआ सभी जातियों, वर्णों सम्प्रदायों और धर्मों का अनुयायी विशाल लोक समूह। यदि इतिहास और तथ्यों के साथ न्याय करना अभिष्ट हो और हिन्दी के अतीत की वास्तविकता से अवगत होने में कष्ट न हो तब यह जान लेना आवश्यक है कि कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक कारणों से, जो साम्प्रदायिक तथा साम्राज्यों से संबंधित नहीं थे, इस वाणी को 'ग्वालियरी' कहा जाता था, समस्त भारत में कहा जाता था और पूरी चार शताब्दियों तक कहा जाता था।

जार्ज ग्रियर्सन ने हिन्दी की बोलियों का सर्वेक्षण किया था। वह कार्य जिस उद्देश्य से प्रेरित था यह कभी भूलने की बात नहीं है। अंग्रेज इतने दयालु क्यों बन गये कि वह भारत के प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास की भी शोध करने में धन व्यय करने लगा और भाषा पर भी कृपा करने लगे ? भारतीय संस्कृति में जो कुछ सर्वश्रेष्ठ है उसकी प्रेरणा शक्ति पुराने साम्राज्यों में प्रदर्शित की गई अर्थात भारतीय जनता ने कुछ नहीं किया, वह नितान्त मृत थी, मृत रही है। साम्राज्य के पश्चात जिन्हें महत्व दिया गया था, वे थे धर्म और सम्प्रदाय। हिन्दू और मुसलमान दो समानान्तर कभी न मिलने वाली रेखाएँ बहुत स्पष्ट रूप से उभार दी गयीं, जो उनके मत में न कभी मिलीं न मिल सकती हैं। हमारा वर्तमान भी खराब हुआ और भविष्य भी।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 August 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

लोकभाषा हिन्दी

अतः हिन्दी लोकभाषा के रूप में उभरी थी, उसका परिपोषण सभी जातियों और वर्गों ने किया था, बड़े प्रयास से उसे सार्वदेशिक रूप दिया गया था, उसमें ऐसा बहुत साहित्य लिखा गया था, जो साम्प्रदायिक न होकर लोकाभिमुख था तथा लोकरंजन के लिए लिखा गया था।

वास्तविकता यह है कि मुस्लिमकाल में अधिकांश जनता खेतों और घरेलू धन्धों में सीमित रहती थी, तथापि जिनके हाथ में काव्य भाषा के रूप के निर्माण का कार्य था वे वर्ग पर्याप्त घुमक्कड़ रहे हैं तथा जिनके रंजन के लिए काव्य लिखे जाते थे वे भी उलगाना वृत्ति के होते थे। हर्षवर्धन (606-646 ई) की मृत्यु के पश्चात से सन् 1400 ई. अर्थात तैमूर के आक्रमण तक का इतिहास इस स्थिति को बहुत स्पष्ट कर देता है। दक्षिण के राष्ट्रकूट काश्मीर से बंगाल तक धावे मारते दिखाई देते हैं4, काश्मीर का ललितादित्य बंगाल तक साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास करता है5, बंगाल का धर्मपाल पंजाब तक बंगाली साम्राज्य फैला लेता है6, प्रतिहार वल्लमण्डल से बिहार तक फैलने का प्रयास करते हैं।7 कभी गजनी पर आक्रमण करने के लिए कालिंजर, ग्वालियर, मालवा, अजमेर, दिल्ली की सेनाएं पश्चिमी पंजाब और काबुल के हिन्दूशही राजा की सहायता के लिए पहुँचती हैं।8 कभी तुर्क लाहौर से चलकर सीधे गंगासागर तक पंहुचते हैं।9 इन सेनाओं के साथ रसद देने के लिए व्यापारी, मनोरंजन के लिए गायक, नर्तक, बाजीगर चलते थे, पुण्य लाभ कराने के लिए पंडित-व्यास चलते थे, यशोगान के लिए चारण भाट चलते थे, आख्यान-कविता सुनाने के लिए कवि चलते थे। उनके छोटे-बड़े आख्यानों काव्यों में, धर्मोपदेशों में, रणमंत्रणाओं में, स्थानीय बोलियॉ छूटती गयीं व्यापक सम्पर्क भाषा का निर्माण होता गया। उनकी काव्य भाषा भी व्यापक रूप लेती गयी।

तुर्कों के समय भाषा

तुर्कों की सेनाओं के साथ शेख, सूफी, उल्मा, मुल्ला, मौलवी भी आगे पीछे हो लिए। उन्हें अपने शिविर के बाहर तलवार की विश्वव्यापी भाषा के माध्यम से ही काम चलाना पड़ता था, तथापि सन्धि-विग्रह आदि के लिए उन्हें स्थान-स्थान की भारतीय वाणियों से भी परिचित होना पड़ता था। शेखों और सूफियों का काम ही धर्मप्रचार था। उन्हें भारतीय भाषाओं से परिचय प्राप्त करना अनिवार्य था। चिश्ती और सुहरावर्दी खानकाहों (मठों) के विकास का इतिहास पर्याप्त मार्ग दर्शक है। अनेक सूफी प्रचारकों के जीवन चरित्र उससे भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। वे आज लाहोर में दिखाई देते हैं, कल अजमेर, अगले वर्ष दिल्ली में, फिर जौनपुर में, अगले दो चार वर्ष बाद बंगाल में और अन्त में माण्डू में।10 उनके द्वारा भी कोई ऐसा भाषा रूप अस्तित्व में लाया गया होगा जो बोलियों से ऊपर किसी व्यापक स्वरूप का होगा। वे काव्य और संगीत के भी प्रेमी होते थे, उनकी काव्य भाषा व्यापक थी।

हिन्दू राजाओं के विस्थापन और पुनर्स्थापन की कहानी भी महत्वपूर्ण है। तोमर दिल्ली से धकेले गये, चम्बल घाटी में आ गये, कुछ बिहार तक दिखाई देते हैं, और कुछ हिमालय की तलहटी में भी।11 चौहान अजमेर से उखड़े और बिहार तक फैल गये।12 परमार मालवा से उखड़े, समस्त भारत में फैल गये।13 गहड़वाल काशी से उखड़े, पंचम बुन्देला बनकर गढ़कुंडार आ गये14, कुछ कमध्वज या राठौड बनकर राजस्थान में घुस गये।15 वे अपने साथ खजाना भी ला सके और

साथ में पुराने पोथी-पत्रों तथा कुछ कवि भाट भी लाते रहे।

मध्ययुग के साधु संन्यासी, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, अदभुत परिभ्रमण वृत्ति लिये हुए थे। नियत समयों और स्थानों पर विशाल कुंभ, मेले और चारों धामों पर समस्त भारत के साधु संन्यासी एकत्रित होते थे। जैन व्यापारी संघपति, संघाधिपति (सिंघई) की पदवी पाने के लिए दिल्ली से गिरनार या ग्वालियर से गिरनार आदि क्षेत्रों तक की यात्राओं के संघ चलाते थे। उनमें हजारों का हुजूम चलता था, धर्मोपदेश भी होता था और फाग, चांचर, रास बारहमासे आदि नाच-नाच कर गाये जाते थे, जिनमें धर्म कम और रस अधिक होता था। नाथपंथ के मठ समस्त भारत में फैल गये थे। जनता को धर्मोपदेश करने के लिए बहुत विशाल और प्रबल क्षेत्र पटल के आधार पर वाणियाँ भी प्रस्तुत आख्यान भी और काव्य भी। व्यापारियों के सार्थ तथा महासार्थ (कारवां) चलते थे। पूरा नगर ही होते थे ये महासार्थ। उनके साथ सैनिक, दास-दासी, कवि, साधु-संत सब चलते थे।

इस समय तुर्कों ने एक और विपत्ति ढहा दी थी। लाखों की संख्या में जनसमूह विशेषतः स्त्रियाँ और कारीगर बन्दी बनाये जाते थे। जब तुर्कों का मूल केन्द्र गजनी या गौर रहा, ये गुलाम वहां भेजे जाते रहे। जब तुर्कों ने भारत में जमने की सोची तब ये दास-दासियाँ दिल्ली या अन्य राजधानियों में समेटी जाने लगीं। सबसे अधिक दृष्टि रहती थी स्त्रियों की ओर, वे पर्याप्त संख्या में पकड़ी जाती थीं, वे सुल्तानों के हरमों की शोभा भी बढ़ाती थीं और सामन्तों तथा सैनिकों को भी बाँटी जाती थीं। फीरोजशाह तुगलक इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय है।16 ये स्त्रियाँ फारसी-तुर्की से अनभिज्ञ थीं। उन्हें नाममात्र के लिए इस्लाम भी ग्रहण कराया जाता था। उस मुर्गीखाने में कुछ शब्द और वाक्य सामान्य भाषा के भी जड़ पकड़ गये होंगे। अमीर खुसरों की मुकरियां और पहेलियां ऐसे ही तुर्क अन्तःपुरों के मनोरंजन के लिए लिखी गयी थीं।17

राजपूत राजाओं के 'राउरों' की भी दशा अत्यंत मनोरंजक थी। जब तक बंगाल से पंजाब तक काश्मीर से कोंकण तक की अष्टभाषाओं में चहकने वाली नायिकाएं इकट्ठी न कर ली जाएं, अन्तःपुर अधूरा ही माना जाता था। यह 'अष्टभाषा साहित्य में भी प्रवेश कर गयीं। इन अष्टभाषा-भाषी जमघटों की जमादारनी को कोई एक भाषा रूप भी आवश्यक हुआ होगा, राजा को रिझाने के लिए या पेट पालने के लिए, इन अष्टभाषा की पंक्षिनों को कुछ उसकी भाषा में भी चहकना पड़ता होगा।

इस प्रकार की परिस्थितियों में उस भाषा का विकास हुआ था, जिसे तुर्कों और शेख-सूफियों ने हिन्दी या हिन्दवी**18** नाम दिया था। उसकी धरती पंजाब और कुरूक्षेत्र की स्थानीय बोली थी और सब कुछ सार्वदेशिक। यही भाषा रूप गया था गुजरात और इसी ने दक्षिण भारत में प्रवास किया था,**19** पूर्व में वह ठेठ बंगाल तक समझा जाता था।

हिन्दी का उभार

इन्हीं बहुरंगी परिस्थितियों में हिन्दी के प्रारंभिक गद्य और पद्य का रूप उभरा था। प्रारम्भ में वह साहित्य या काव्य की श्रेणी का नहीं था। धीरे-धीरे वह उस प्रतिष्ठित पद पर पंहुचा। हिन्दी काव्य भाषा के विकास के अध्ययन के लिए अब कुछ प्रामाणिक सामग्री 8वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी की उपलब्ध है, जिसका संक्षिप्त परिचय यहां देना विषयागत होगा -

ई.सन् 778-79 में 'कुबलयकथामाला' लिखी गयी उसमें मध्यदेश में बोली जाने वाली भाषा का स्वरूप देखिए -

तेरे मेरे आउति जम्पिरे मज्झ देसे य।**20**

मान्यखेट (दक्षिण भारत) के 'अभिमान मेरू' पुष्पदन्त ने भी 'णायकुमार चरिउ' (ई.सन 970 के लगभग) में इस प्रकार की भाषा लिखी है-

सोहइ जलहरू सुरघणु छायए।
सोहइ माणुसु गुण सम्पत्तिए।।**21**

लगभग इसी समय मुलतान में अब्दुल रहमान ने 'संदेश रासक' लिखा था, इसमें भी काव्यभाषा हिन्दी के कुछ वाक्य उभर पड़े थे। इस आधार पर यह हिन्दी का प्रथम प्रामाणिक मुस्लिम कवि सिद्ध होता है -

'संदेश डउ सवित्थरउ पर मइ कहणु न जाइ'**22**

चालुक्यवंशी सर्वज्ञभूप सोमेश्वर (महाराष्ट्र)ने 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' की रचना ई. सन् 1127 में कराई थी। उसमें टाक प्रदेश (पश्चिमी कुरुक्षेत्र) की हिन्दी का यह उद्धरण -

नंद गौकुल जायो कान्ह जो गोवी जणे
पडि हेली रे नयणे जो विया घदणा।**23**

शेख फरीदुद्दीन गजशंकर(1173-1265 ई.) का जन्म मुलतान के पास कहतवाल नामक स्थान में हुआ । पहले वे मुलतान गये फिर दिल्ली आ गये, वहां से हांसी और अन्त में अजोधन (पाकपट्टन) में मृत्यु हई। उनके छन्द-

टोपी लेंडी बाबरे, देंडी खरी निल्लज।
चूहा गड्ढ न मानवै, पिच्छे बंधत छज्ज।।**24**

ई. सन् 1287 के लगभग गोदावरी तट पर दामोदर पण्डित कुछ इस प्रकार की भाषा लिख रहे थे-

ऐसे हो तुम ग्यान बैरागी, खरग धार चलाइ।
अहंकार जीन्हे भांज्यो नहिं, परसिद्धि कैसे पाइ।।**25**

सन्त ज्ञानदेव का समय (1274-1296 ई.) है। उनके द्वारा इस प्रकार की हिन्दी लिखी जाती थी-

सब घट देखो माणिक मौला
कैसे कहूं मैं काला धवला
पंचरंग से न्यारा होय
लेना एक और देना दोय।**26**

सन्त नामदेव का समय (1260-1350 ई.) माना जाता है। उनकी भाषा इस प्रकार की थी-

जौ राजु देहिं त कवन बडाई
जौ भीख मॅगावहि त किआ घटिया जाई।**27**

नामदेव के पुत्र गोंदा महाराज(1351 ई.) द्वारा हिन्दी भाषा में किया गया गजानन वर्णन निम्न रूप में है-

गजानन गौर सुत, लाल अंग पर बभूत।
तेरे मुख वचनामृत, उसे ज्यमदूत भागत है।
विधाभरी दंदुल पेट, उस पर साप की लपेट।
विघन करत है चपेट, पकड फेट कालकी।**28**

अब चलते हैं दिल्ली की ओर। ई. सन् 1324 में अमीर खुसरो ने शेख निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु पर यह दोहा पढ़ा था -

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।**29**

अजमेर में नरपति के 'बीसलदेवरास' का समय (1320 ई.) की रचना है, उसकी भाषा इस प्रकार की है-

हंस बाहिणि मिग लोचनि नारि, सीस समारइ दिण गिणइ।
जिण सिरजइ उलगणि घरनारि, जाइ दिहाडउ झूरितां।**30**

अब चलते हैं गर्वीले गुजरात की ओर जहां विजयभद्र सूरि ने ई.सन् 1345 में 'गौतमरास' लिखा था। उसकी भाषा इस प्रकार थी -

जिमि सुरतरुवर सोहे साखा, जिम उत्तम मुख मधुरी भाषा।

जिमि बन केतकी महमहए, जिमि भूमिपति भुजबल चमके।**31**

इसके पश्चात दिखाई देते हैं दिल्ली के मुल्ला दाउद, जिनका रचनाकाल सन् 1375 ई. का माना जाता है। उनकी रचना 'चन्दायन' जिस रूप में प्राप्त हुई वह उसकी सन 1480 ई. के पश्चात् प्रस्तुत की गई वाचना है।**32** परन्तु हिन्दी साहित्य में 'कुछ न कुछ' पुराना होने का सिद्धांत बहुत चल निकला है। इस सिद्धांत के अनुसार सन् 1550 ई. के आस-पास की रचना 'पृथ्वीराज रासो' का 'कुछ न कुछ' सन् 1200 ई. के आसपास रचा गया माना जाता है।**33**

अतः कुछ न कुछ के आधार पर दाऊद की भाषा इस रूप में मिलती है -

कातिक निरमल रैनि मुहाई, जोन्ह निहारहिं हउं रे सताई

तेहि परि कामिनी सेज विछावहिं, कृंत अमोल भेंट गिय लावहि

मुंहि लेखे सब जग अधियारा, लई गई चांद मोर उजियारा।**34**

विभिन्न शताब्दियों और विभिन्न प्रदेशों के स्थानीय प्रभाव और प्रतिलिपिकारों की अपनी-अपनी विशेषताओं के होते हुए भी ऊपर दिये गये उद्धरणों की भाषा में समानता अधिक है, विभेद नगण्य। 19वीं शताब्दी के अन्त में विभिन्न भागों में बोली जाने वाली बोलियों को हिन्दी काव्य भाषा के विकास या स्वरूप के साथ जोड़ने वाले विद्वानों की स्थापनाओं का सटीक उत्तर इन उद्धरणों में प्राप्त हो जाता है। किसी कवि विशेष की काव्य भाषा पर स्थानीय प्रभाव अवश्य दिखाई देता है तथापि उसका व्यापक घरातल संकुचित नहीं है।

जार्ज ग्रियर्सन**35** या उनके अनुकरण में किए गए बोली-विवेचनों को काव्य भाषा के क्षेत्र में अंगीकार करने का परिणाम यह होगा कि जिस काव्य भाषा के परम्परागत स्वरूप को उक्त कवियों ने प्राप्त किया था, वह मुल्तान-लाहौर से चला, फिर गोदावरी के तट पर पहुंचा, फिर अजमेर की ओर भटका तथा गुजरात की ओर मुड़ गया, फिर दिल्ली अटका, दिल्ली से बेतवा किनारे 'एरछ' पंहुचा और फिर गोपाचल के शिखर (ग्वालियर) पर आरूढ़ हो गया। किसी भी दशा में इस काव्य भाषा को 'क्षेत्रीय बोली' नहीं कहा जा सकता।

15 वीं शताब्दी में इसी गोपाचल पर विष्णुदास से लेकर शरणागति-पूर्व सूरदास के काव्य की दो लाख पंक्तियां प्राप्त होती हैं, जिनमें जाति के मुसलमान नायक बक्शू के भी पद है, जिनमें से एक हजार पदों का संग्रह शाहजहां ने कराया था।**36** एक महमूद लोहंग भी था, उसने भी बहुत पद लिखे। उधर कबीर भी बहुत लिख या गा गये हैं। इन सब साहित्य को किस 'महाप्रभु' के चरणों में पटक दिया जाए ? ये सब श्रीनाथजी के मन्दिर में घुसने को तैयार होंगे, इसमें सन्देह नहीं है, और वे घुसना भी चाहें तब लखनसेनी के शब्दों में - वे भोंदू महन्त उन्हें घुसने देंगे?

मूल की भूल, पहली भूल, दुर्भाग्यपूर्ण भूल यह है कि हिन्दी काव्यभाषा और हिन्दी साहित्य के विवेचनों में बहुत पुराने समय से (यानि 19वीं शताब्दी से) सम्राट घुस पड़े, हिन्दू-मुसलमान की दीवारें घुस पड़ी और बोलियां घुस पड़ी। जब कोई मुसलमान हिन्दी कवि मिल जाता है या खोज लिया जाता है, तब समझा यह जाता है कि किसी 'विदेशी' की हिन्दी कविता मिल गई। बिना यह विचार किये कि हिन्दी उस कवि की मातृभाषा थी, उसे उतनी ही प्रिय थी जितनी

हिन्दुओं को। हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास किसी मठ, मन्दिर, खानकाह, दरगाह या मस्जिद में नहीं हुआ था। वह जनवाणी के रूप में विकसित हुई थी, उसके स्वरूप का निर्माण हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिद्ध सब ने किया था, मिलकर किया था, वे अन्य सब क्षेत्रों में लड़े और खूब लड़े, मिले केवल भाषा और साहित्य के क्षेत्र में; गाली देने के लिए भी, प्रेम करने के लिए भी, गाने के लिए भी, रोने-रुलाने के लिए भी।

निष्कर्ष

वास्तविकता यह है कि 15 वीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दी काव्य भाषा के क्षेत्र में कहीं कोई क्रान्ति या प्रतिक्रान्ति नहीं आई थी।**37** सन 1500 या 1550 ई. तक किसी ब्रज भाषा यानि ब्रजमण्डल के किसी कवि ने भी कृपा नहीं की थी। कठिनाई यह है कि शुक्लजी ने जब भाषा विवेचन किया था तब उनके समक्ष 14-15 वीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य उपलब्ध ही नहीं हुआ था; यदि यह सब साहित्य उनके सामने होता तब वे निश्चित ही इस परिणाम पर पहुँचते कि भाषा के क्षेत्र में हिन्दी में कोई क्रान्ति नहीं हुई थी, व्यापक और विस्तृत शौरसेनी अपभ्रंश से, भाषा रूपों के विकास के सामान्य नियमों के अनुसार, उसी व्यापक स्तर पर हिन्दी काव्य भाषा का भी विकास हुआ था।

संदर्भ ग्रन्थ

1 *शुक्ल, रामचन्द्र, बुद्ध चरित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 1979, पृष्ठ 55*

2 ब्रजभाषा, पृष्ठ 17; डा. धीरेन्द्र वर्मा ने इसी ग्रन्थ को ई.सन् 1935 में फ्रांसीसी भाषा में 'ला लॉग ब्रज' नाम से प्रकाशित किया है।

3 बुद्ध चरित वक्तव्य, पृष्ठ 2

4 मजूमदार, आर.सी. व के.एम. मुंशी, द स्ट्रगल फार एम्पायर, भारतीय विद्या भवन बाम्बे, 1957, पृष्ठ 50, 221-222; मदन,ए.पी., द हिस्ट्री ऑफ द राष्ट्रकूटस, हरमान पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1990, पृष्ठ 94-95

5 कल्हण कृत, राजतरंगिणी, सम्पा., रघुनाथसिंह हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, 1973, भाग 2, पृष्ठ 155; द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 420, 635

6 मजूमदार, आर.सी., द हिस्ट्री ऑफ बंगाल, द यूनिवर्सिटी ऑफ ढाका, 1943, भाग 1 पृष्ठ 109; एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 4, पृष्ठ 243

7 'वल्लमण्डल' प्रतिहारों के राज्यों का संघ; द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 14, 61-62, 131, 274, 276; द्विवेदी, हरिहरनिवास, दिल्ली के तोमर, विद्यामन्दिर प्रकाशन ग्वालियर, 1973, पृष्ठ 273; मिश्रा, विभूति भूषण, द गुर्जर प्रतिहारास एण्ड देयर टाइम्स, एस.चांद एण्ड कम्पनी' दिल्ली, 1966, पृष्ठ 32-33, 64

8 अल्बीरूनी, अबुरेहान मोहम्मद इब्न अहमद, की तहकीक मालील हिन्द अर्थात किताबुल हिन्द, हैदराबाद, 1958, पृष्ठ 350; मिश्र, योगेन्द्र, द हिन्दू साहीज ऑफ अफगानिस्तान एण्ड पंजाब, वैशाली भवन पटना, 1972, पृष्ठ 3-5, 107-10; द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 4

9 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 122-123; अशोककुमार सिंह सल्तनत काल में हिन्दू प्रतिरोध पब्लिकेशन स्कीम जयपुर, 1992, पृष्ठ 135-137; कर्नल बूल्जले हेग द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (तुर्कस एण्ड अफगानिस्तान) कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 1928, भाग 3, पृष्ठ 46

10 देखें- गर्ग, राम सेवक, धार एवं माण्डू की सूफी संत परम्परा, आदिवासी लोक कला अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, 2005,

11 देखिए- द्विवेदी, हरिहरनिवास, दिल्ली के तोमर व ग्वालियर के तोमर, विद्यामंदिर प्रकाशन, ग्वालियर, 1973, 1976

12 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 81-88; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 515-518.

13 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 66-73; गांगुली, डी.सी. परमार राजवंश का इतिहास, न्यू बिल्डिंग्स अमीनाबाद, लखनऊ देखिए।

14 गुप्त, डा. भगवानदास, महाराजा छत्रसाल बुन्देला, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रा.लि. आगरा, 1958, पृष्ठ 18-19, 30-31.

15 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 51-55; कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 513, 521.

16 इब्नेबतूता का यात्रा विवरण का हिन्दी अनुवाद तुगलक कालीन भारत, सम्पा. अतहर अब्बासरिजवी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़, 1953, भाग 1, पृष्ठ 189, 238

17 ब्रजरत्नदास, खुसरो की हिन्दी कविता, काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संवत् 2010, पृष्ठ 11, 36-41, 42-47.

18 देखिए - मेरा (लेखक) शोध पत्र - फोर्ट विलियम कॉलेज और हिन्दी, इन्टरनेशनल रिसर्च एण्ड रिव्यू, अगस्त 2022, भाग 1 पृष्ठ 44-49

19 शर्मा, श्रीराम, दखिनी का पद्य और गद्य, पृ. 403; राहुल सांकृत्यायन ग्वालियर और हिन्दी कविता, भारती (शोध पत्रिका) अगस्त 1951, पृष्ठ 167; डा बाबूराम सक्सेना, दक्खिनी हिन्दी, पृष्ठ 23

20 द स्ट्रगल फार एम्पायर, पृष्ठ 389; अपभ्रंश काव्यत्रय कुवलय कथा माला, द हिस्ट्री ऑफ राष्ट्रकूट्स, पृष्ठ 81 टि. 115; एपिग्राफिया इण्डिका, भाग 6, पृष्ठ 239.

21 पुष्पदन्त कृत णायकुमार चरिउ सम्पा जैन, डा. हीरालाल व पी.एल. वैद्य, कारंजा, 1933, पृष्ठ 94.

22 अब्दुल रहमान कृत संदेश रासक, सम्पा, जिन विजयमुनि, भारतीय विद्या भवन बम्बई, 1945, ग्रंथांक 22, छंद सं. 80-81

23 भालेराव, भास्कर रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद, पृष्ठ 87

24 रिजवी, डा. अतहर अब्बास व डा. शैलेश जेदी, अलखवानी, हिस्ट्री डिपार्टमेंट अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़, प्रस्तावना पृष्ठ 62.

25 शर्मा, डा. विनयमोहन, हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1984 पृष्ठ 238

26 हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृष्ठ 91

27 हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृष्ठ 97-100, 243, इसी सम्बंध में इनकी एक और कृति देखिए नामदेव और उनकी हिन्दी कविता, विश्वभारती खण्ड 6, अंक 2, 1947 ई अधिक जानकारी के लिए देखिए - पुणे विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित 'सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली', सन् 1964 ई.।

28 हिन्दी को मराठी संतों की देन, पृष्ठ 273

29 खुसरो की हिन्दी कविता, पृष्ठ 3; अलखवानी प्रस्तावना, पृष्ठ 64.

30 नरपति कृत, बीसलदेवरास, सम्पा. माताप्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय प्रयाग, 1953, पृष्ठ 61; सीताराम शास्त्री, बीसलदेवरास एक गवेषणा, हिन्दुस्तान एकेडमी इलाहाबाद 1963, पृष्ठ 26.

31 जैन, श्रीरामचन्द्र, काव्यमाला, प्रथमगुच्छ पृष्ठ 28.

32 साधन कृत, मैनासत, हरिहरनिवास द्विवेदी, विद्यामन्दिर प्रकाशन ग्वालियर, 1959, पृष्ठ 61.

33 देखए - मुनि जिनविजय सम्पा पुरातन प्रबंध संग्रह, सिंघी जैन विद्यापीठ कलकत्ता, 1936 ई.

34 गुप्त, डा. माताप्रसाद, लोरकहा, पृष्ठ 13.

35 देखिए - जार्ज ग्रियर्सन, द मार्डन लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ हिन्दुस्तान

36 सहसरस (नायक बख्शू के धुपदों का संग्रह) सम्पा. डा. कु. प्रेमलता शर्मा, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली, 1972, पृष्ठ 109

37 मुगलों के साम्राज्य की विभेदक नीति के कारण यह भाषा क्रांति गुजरात पूर्वी विहार और बंगाल में आई थी, जहां की स्थानीय बोलियाँ केन्द्रस्थ हिन्दी से विद्रोह कर स्वतंत्र काव्य भाषाओं के रूप में आगे बढ़ने लगीं